

## व्यक्तिगत जीवन में नैतिकता



वीणा रानी तिवारी

रीडर, सुन्दरवति महिला महाविद्यालय, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय



### Authors Short Profile



### सारांश :

नैतिकता के सम्बन्ध में प्रश्न यह उठता है कि हमारे नैतिक होने का आधार क्या होगा अर्थात् इस बात का ज्ञान हमें किस आधार पर होगा कि 'क्या नैतिक है' और 'क्या अनैतिक है'।

साधारणतः भारतीय दर्शन में इस प्रश्न का उत्तर यह मिलता है की 'शास्त्र' ही नैतिकता के मूल आधार है। राधाकृष्णन शास्त्र की इस अधिकारिता की उपेक्षा नहीं करते परन्तु इसके साथ ही साथ नैतिकता के मामले में व्यक्ति के अपने

आन्तरिक ज्ञान को भी महत्व देते हैं। उनका कहना है कि नैतिकता बाहर से लादी जाने वाली चीज नहीं है बल्कि यह आन्तरिक उपज है व्यक्तिगत जीने की कला इस बात में नहीं कि हम कुछ पुराने बंधनों में जकड़े रहे, कुछ जीर्ण-नियमों को दुहराते रहे बल्कि जीवन का महत्व और जीने की वास्तविक कला तो उसकी सृजनात्मकता में हैं।

जीवन कला का अर्थ इस जीवन नाटक की भूमिका को जैसे तैसे काटना नहीं है। जिन्दगी वह खेल है जिसकी समाप्ति तभी होती है जब व्यक्ति इसको खेलना बन्द कर देता है। जिन्दगी रूपी खेल को खेलने के लिए कौशल और साहस की जरूरत है। जब वह इस तकलीफ को अपने अर्न्तदृशित से पकड़ लेता है तो वह प्रगति की ओर उन्मुख हो जाता है ओर विकट परिस्थिति में उन्मुख होने का अर्थ सृजनशीलता की ओर उन्मुख होना है। नैतिकता अर्न्तज्ञान की चीज है, व्यक्तिगत सूझ की चीज है जो बाह्य नियमों के बंधन में बाधी नहीं जा सकती। जीवन की हर जटिल परिस्थिति में हमारा अर्न्तबोध ही वास्तविक नैतिक निर्देशक है। हमारा काम सिर्फ सामाजिक नियमों का पालन नहीं बल्कि समय और परिस्थिति के साथ सामाजिक नियमों का सृजन भी है। ऐसे लोग साधारणतः समाज के क्रोध के शिकार अवश्य होते हैं फिर भी नैतिक प्रगति ऐसे ही लोगों की देन है जो इन नियमों के बन्धनों से उपर उठ जाते हैं।

## 15.1.1

शुद्ध प्रेम एवं पूर्ण स्वतंत्रता से ओत-प्रोत हमारी आत्मा ही हमारे शुभ कर्मों की वास्तविक जननी हो सकती है। सुकरात ने कहा है कि “नैतिकता ज्ञान है” परन्तु इससे उनका मतलब यह नहीं था कि नैतिकता एक शिक्षा है जो बाहर से किसी को दी जा सकती है। यह अर्न्तज्ञान है, आन्तरिक सूझ है जो प्रेम और स्वतंत्रता की भावना से उदभूत होता है। ‘उच्चतम नैतिकता’ नियम का बन्धन नहीं है बल्कि शुद्ध प्रेम है।

टैगोर ने नैतिकता को चरम लक्ष्य की प्राप्ति का एक साधन माना है जिसे वे आत्मोपलब्धि, आत्मबोध, आत्मपूर्णता, आत्मस्वतन्त्रता आदि कई नामों से पुकारते हैं। टैगोर कहते हैं कि मनुष्य अपने बाह्य प्रकट रूप में सीमित शरीर मन का मिश्रित पुतला मालुम पड़ता है और अपने आप को उसी रूप में लेने के कारण वह वासनाओं एवं तृष्णाओं का शिकार बन जाता है। परन्तु उसके अन्दर जो देव रूप आत्मा है वह अनन्त है तथा उस रूप में मनुष्य मानवता यानी समस्त सृष्टि के साथ बिल्कुल एक है। जबतक मनुष्य अपने आप में सीमित रहकर अपने निम्नतर सांसारिक स्वरूप को वास्तविक मानता रहता है और यह समझता है कि संसार की विविधता में यह एक स्वतंत्र इकाई है जिसको दूसरों से वास्तविक सम्बंध नहीं है तब तक वह बंधन में है और ज्यों ही समझ लेता है कि सत्य एकता है उसका वास्तविक स्वरूप उसकी आत्मा है जो समस्त ब्रह्माण्ड के साथ अभिन्न है त्यों ही उसे आत्मसाक्षात्कार हो जाता है। आत्मसाक्षात्कार के लिये टैगोर किसी प्रकार के वैराग्यवाद को आवश्यक नहीं मानते बल्कि प्रेम, आत्मत्याग, परस्पर निर्भरता आदी जैसे नैतिक भावनाओं एवं कर्म को ही वे इसके लिए पर्याप्त मानते हैं।

मनुष्य जानता है कि वह अपूर्ण नहीं बल्कि अधुरा है, वह जानता है कि उसके जीवन के कुछ अर्थों को जानना अभी शेष है। इस प्रकार ‘क्या है’ और क्या होना चाहिए, के भेद को समझना है। एक अनिवार्य चेतना मनुष्य के अन्दर है और जिसके अनुरूप वह हर क्षण प्रयासशील रहता है यही इस बात का घोटक है कि मनुष्य के अन्दर स्वतन्त्रता है। यह स्वतन्त्रता की ही निशानी है कि अपने नैतिक जीवन में मनुष्य दूसरों के प्रति अपना दायित्व समझता है। उस स्वतन्त्रता का परिणाम है कि अपने आध्यात्मिक जीवन में प्राणी मात्र के साथ मनुष्य प्रेम का अनुभव करता है। आध्यात्मिक जीवन में निश्काम भावना की परिणति प्रेम के रूप में हुई है। इस प्रकार मनुष्य की स्वतंत्रता से ही होता है परन्तु उसका विकास नियमों के बंधन में होता है। यह बंधन सच्चे भौतिक व्यक्ति के लिए बाहर से लादा गया कोई ऐसा बंधन नहीं है जिसमें वह पीड़ा का अनुभव करे बल्कि यह एक ऐसा बंधन है जिसमें वह आनन्द का अनुभव करता है। बिल्कुल स्वतंत्र तो ईश्वर भी नहीं है वैसे तो ईश्वर पर कोई बंधन अनिवार्य नहीं है परन्तु सृष्टि के माध्यम से अपने को अभिव्यक्त कर उसने अपने आप को एक बंधन में बांध लिया है। उसी में आनन्द का अनुभव करता है। ठीक उसी प्रकार मनुष्य भी नियमों के बंधन में पल कर बंधन का अनुभव नहीं करता और यही नैतिकता का अर्थ है।

नैतिकता लक्ष्य नहीं है वह एक साधन मात्र है जब तक नैतिकता को लक्ष्य के रूप में मनुष्य का प्राश्वत अनन्त स्वरूप नहीं रखा जाता तब तक साधन के रूप में भी नैतिकता एक सार्थक साधन नहीं बन सकती। देश-काल और परिस्थिति की भिन्नता के साथ हमारे कर्तव्यों के मापदण्ड में भी भिन्नता कुछ स्वभाविक है। लेकिन यदि नैतिकता सापेक्ष है तो वह बिल्कुल आत्मनिश्चिन्त रहकर कुरीतियों और कुव्यवहारों का शिकार बन जायगी। नैतिकता को निरपेक्ष होना आवश्यक है और वह है अहं का त्याग। जबतक स्वार्थ है तब तक नैतिकता नाम की कोई चीज ही नहीं है।

भारतीय दर्शन में नैतिकता के दो पहलुओं को स्वीकार किया गया है।

1. वैयक्तिक नैतिकता
2. समाजिक नैतिकता

वैयक्तिक नैतिकता व्यक्ति को उसकी नैतिक पवित्रता तथा उसके नैतिक उत्थान के लिए इन्द्रियों को वश में करना सीखाता है। आत्मपवित्रता भारतीय विचारधारा में नैतिकता का एक महत्वपूर्ण पहलू है। योगदर्शन का आश्टांगिक मार्ग

व्यैक्तिक नैतिकता का प्रतीक है। श्री अरविन्द का सर्वांगीन योग भी उसी नैतिकता का प्रतीक है। व्यैक्तिक अनुशासन के वृत्त भी नैतिकता के ही व्रत हैं।

भारतीय दर्शन में सामाजिक नैतिकता की अवहेलना नहीं की जाती है, बल्कि इसे भी नैतिकता के एक महत्वपूर्ण पहलु के रूप में स्वीकार किया जाता है। राधाकृष्णन का कहना है कि “दर्शन में निश्काम कर्म, आत्मत्याग, मानवप्रेम इत्यादि नैतिक गणों को महत्व दिया गया है वह सामाजिक नैतिकता के प्रतिक हैं”। सम्पूर्ण मानवता के साथ साहचर्य की भावना हमारी प्रकृति में समाहित है हम लोग एक विश्व समुदाय के सदस्य हैं। यही कारण है कि बुद्धि के दुःप्रभाव में पड़कर वर्ण, जाति, के संकीर्ण दायरा में धिरे रहने के बावजूद भी कभी-कभी समस्त मानवता के प्रति हमारा उद्गार उमड़ पड़ता है। समुदाय की भावना सभी लोगों के हृदय सुशुत्पावस्ता में विद्यमान रहती है। यहा तक कि इस कृत्रिम संसार में भी जिसमें हमारे पार्थिव बुद्धि ने हम में प्रजातीयता, जातीयता तथा राश्ट्रीयता की भावना को लाद दिया है। मनुष्य की स्वार्थपरायणता की सारी भावनाओं को त्याग कर लोग कल्याण और परोपकार आदि के भावनाओं से कार्य कर के ही हम अपने व्यक्तित्व कि सीमितता को विस्तृत कर दूसरे से मिल सकते हैं तथा सार्वभौम के साथ एकत्व की भावना प्राप्त कर सकते हैं। स्वार्थ त्याग आध्यात्मिक विकास की पहली सीढ़ी है और स्वार्थ त्याग ही नैतिकता की रीढ़ है। भारतीय दर्शन में जो निश्काम कर्म, आत्मत्याग, मानवप्रेम इत्यादि जो नैतिक गुणों का महत्व दिया गया है वह सामाजिक नैतिकता के ही प्रतिक हैं।

नैतिकता को हम सामाजिक व्यवस्था के रूप में स्वीकार कर सकते हैं जिसका विकास समाज में ही होता है। समाज में निरपेक्ष नैतिकता की न तो कोई संभावना है और न आवश्यकता। नैतिकता रीति रिवाज, प्रथाओं, नियमों सिद्धान्तों, मुल्यों एवं आदर्शों से सम्बन्धित वह सामाजिक व्यवस्था है जिसका उद्देश्य मनुष्य के व्यैक्तिक कल्याण तथा सामाजिक हित का मार्गदर्शन करना है। नैतिक नियम सार्वजनिक होते हैं तथा समान परिस्थितियों में सभी व्यक्तियों पर समान रूप से लागू होता है।

भारतीय विचारक अधिकांशतः धर्म और नैतिकता में भेद नहीं करते। धार्मिक पुरुषा उसे कहा जाता है जिसमें नैतिक गुणों का समावेश हो। नैतिक सद्गुणों के अभाव में किसी व्यक्ति को धार्मिक नहीं कहा जाता है। हिन्दू धर्म में वर्णाश्रम धर्म निहीत कर्तव्यों को मानव जीवन के सामाजिक तथा व्यक्तिगत दोनों ही पहलुओं के विकास के लिए अनिवार्य माना है। साथ ही साथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ की चर्चा हिन्दू धर्म में की गई है। इन्ही चार पुरुषार्थ तथा वर्णाश्रम धर्म को निश्ठापूर्वक पालन के द्वारा ही मनुष्य अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है और अनुशासित जीवन जी सकता है।

ईश्वर की सत्ता, आत्मा की अमरता, कर्म-फल सम्बन्ध, संकल्प स्वतन्त्र्य आदि नैतिकता की प्रमुख मान्यताएँ हैं धर्म भी इन्ही मान्यताओं पर निर्भर है। नैतिकता की ही तरह धर्म भी मनुष्य के मन में यह विश्वास भरता है कि वर्तमान जीवन ही अन्तिम जीवन नहीं है। इस जीवन में यदि उसे नैतिक गुणों की प्राप्ति नहीं हुई है तो जीवन में धर्म पथ पर चल कर वह उसकी प्राप्ति करने में सफल हो सकता है।

सामान्य अर्थ में धर्म को स्वीकार किए बिना भी मनुष्य नैतिकता के अनुरूप आचरण कर सकता है। नैतिक आचरण के लिए धर्म की कोई आवश्यकता नहीं है। एक धर्म निरपेक्ष व्यक्ति या अनिश्चरवादी पूर्णतया नैतिक व्यक्ति हो सकता है। नैतिकता धर्म के लिए अनिवार्य लगती है परन्तु धर्म नैतिकता के लिए अनिवार्य नहीं है। यदि धर्म को नैतिकता का आधार माना जाय तो धर्म की विसंगतियों या कमीयों नैतिकता को भी प्रभावित करती है। नैतिकता का सम्बन्ध गुण से है परन्तु धर्म सभी प्रकार के मुल्यों को अपनाता है। धर्म का उद्देश्य सत्यम, शिवम और सुन्दरम की सिद्धि है। धर्म नैतिकता से अधिक व्यापक है। नैतिकता अनन्त की ओर प्रगतिशील है परन्तु धर्म अनन्त में प्रगतिशील है। नैतिकता अनन्त की प्राप्ति के निकट पहुँचाता है, धर्म आध्यात्मिकता का विकास करता है। तथा अनन्त की प्राप्ति में सफल होता है।

उपर जो भारतीय नैतिकता से सामान्य स्वरूप का एक विवरण प्रस्तुत किया गया है उसका आधार सामान्य भारतीय दार्शनिक तथा धार्मिक विचारधारा में है। यों तो कुछ पाश्चात्य दार्शनिक के विचार में नैतिकता का दार्शनिक अथवा धार्मिक आधार होना कोई जरूरी नहीं है पर भारतीय परम्परा जड़विहीन माना गया है। अपने व्यक्तिगत जीवन

में नैतिक नियम तथा सामाजिक जीवन से सम्बन्ध नैतिकता दोनों ही स्थाई तभी हो सकती है जब उनके पालन के पीछे कुछ आध्यात्मिक एवं धार्मिक आस्था हो। चूंकि भारतीय विचारधारा का मूलस्वरूप आध्यात्मिक है जिसमें भौतिक विश्व तथा भौतिक ऋरीर से कहीं अधिक महत्व मनुष्य में स्थित आत्मा यानी मानव जीवन के उत्थान तथा समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपने समान समझना और उसके प्रति प्रेम आदि का भाव रखना नैतिकता का मूल मंत्र है।

इसाई धर्म में कहा गया है अपने पड़ोसी के साथ अपने ही समान प्रेम करो। परन्तु ऐसा क्यों किया जाय, इसका उत्तर भारतीय दार्शनिक एवं धार्मिक परम्परा में मिलता है। चूंकि यहाँ मूल विचार यह है कि मनुष्य का असली स्वरूप उसकी आत्मा है। चूंकि प्रत्येक मनुष्य में या तो एक ही आत्मा है या सामान्य स्वरूप की आत्मा मौजूद है। इसलिए एक मनुष्य का दूसरे से कोई भेद ही नहीं है। इस विश्वास के अनुसार दूसरे के साथ प्रेम करना खुद अपने आप से प्रेम करना है और दूसरे का उपकार करने में ही अपने स्वार्थ की सिद्धि होती है। इस प्रकार भारतीय नैतिकता का आधार उसकी आध्यात्मिक आस्था में है जो कि भारतीय दर्शन तथा भारतीय धार्मिक परम्परा दोनों का मूल स्वरूप है। अतः इस परम्परा के अनुसार नैतिकता एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण से अलग होकर नहीं चल सकती। नैतिकता विश्व और समाज से सम्बन्धित वस्तु अवश्य है पर उसका आधार आध्यात्म में है और यही भारतीय विचारधारा का मूल मंत्र है।

#### संदर्भ :-

- 1).वीर एस्डर नरवणे (1966) : आधुनिक भारतीय चिन्तन, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।
- 2).बसन्त कुमार लाल (1991) : समकालीन भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- 3).डा रमेन्द्र (1998), समाज और राजनीति दर्शन एवं धर्म-दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।